Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 6 | JUNE 2019

संस्कृत साहित्य में लोकप्रशासन

कृष्ण कुमार शर्मा [1] | कमलेश शर्मा [2]

[1] सहायक आचार्य (संस्कृत), राजकीय महाविद्यालय, भादरा, जिला हनुमानगढ़, राजस्थान

[2] सहायक आचार्य (लोकप्रशासन), राजकीय महाविद्यालय, मारवाड़ जंक्शन, जिला पाली, राजस्थान

ABSTRACT:

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीन भाषाओं में अग्रगण्य है। अतः संस्कृत साहित्य में ज्ञान का अगाध भण्डार निहित है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसका उल्लेख या विवेचन संस्कृत साहित्य में न हो। चिकित्सा, गणित, खगोल, अभियान्त्रिकी, पर्यावरण, समाज, राजनीति, भूगोल, प्रशासन, संगीत, संस्कृति, चित्रकला, अर्थव्यवस्था आदि से सम्बन्धित उच्च स्तरीय तथ्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक जानकारी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है।

संस्कृत साहित्य में लोकप्रशासन की चर्चा की जाए तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रन्थों, अर्थशास्त्र आदि में समुचित सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। इन रचनाओं में राजनीतिक संस्थाओं, मन्त्रिपरिषद्, प्रशासनिक तन्त्र, न्याय व्यवस्था का सांगोपांग वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज कुल, ग्राम, विश्व एवं जन या राष्ट्र के रूप में विभक्त था। राजा सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। कालान्तर में उत्तर वैदिक काल में राजा का पद अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था किन्तु नैतिकता के बन्धन के कारण निरंकुश नहीं था। रामायण एवं महाभारत में आदर्श राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का स्वरूप मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी राजतन्त्र के दर्शन होते हैं स्मृति ग्रन्थों मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में भी प्रशासनिक व्यवस्था की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। मनु को तो भारतीय शासन व्यवस्था का जनक कहा जाता है। पश्चात्वर्ती संस्कृत काव्यों में भी यत्र तत्र लोकप्रशासन से सम्बन्धित समुचित जानकारी प्राप्त होती है।

KEYWORDS:

वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, अर्थशास्त्र, प्रशासन, राजा, जन, राजतन्त्र।

जब कभी किसी व्यवस्था या विषय के प्रारम्भ या उत्पत्ति की जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो स्वतः ही हमारा ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर आकृष्ट होता है और इसमें भी वैदिक साहित्य सर्वोपरि है। यह बात लोकप्रशासन के सन्दर्भ में भी पूर्णतया युक्तियुक्त है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में भारत में पहले जनतन्त्र का उदय हुआ था, तत्पश्चात् राजतन्त्र की स्थापना हुई थी। ऋग्वैदिक काल में राज्य 'कुल' 'ग्राम' और 'विश' आदि प्रशासनिक इकाइयों में बांटा गया था। ऋग्वेद में गण, जन, संघ आदि शब्दों का अनेक बार प्रयोग किया गया है, जो कालान्तर में गणतन्त्र, जनतन्त्र और संघ राज्य में परिवर्तित हो गये। प्राचीन काल में राजा को प्रजा पर बलपूर्वक थोपा नहीं जाता था बल्कि जनता स्वयं आवश्यकतानुसार राजा का चयन करती थी। प्रजा को प्रमुख आवश्यकता यह थी कि युद्ध के लिए ऐसा योग्य व्यक्ति हो जो नेतृत्व कर सके। ऋग्वेद में भी उल्लेख मिलता है कि कोई जनवर्ग अपने शत्रुओं से युद्ध में पराजित हो गया था, अतः नेतृत्व के लिए राजा को चुना था।[1] जब कोई राजा राष्ट्रीय सीमाओं का दिग्विजय के द्वारा विस्तार कर लेता था तब उसे सम्राट् की उपाधि से विभूषित किया जाता था।[2]

राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए सभा, समिति, विदथ, इहा, सरस्वती, भारती आदि संस्थाओं की व्यापक जानकारी भी वैदिक साहित्य से मिलती है। उत्तर वैदिक काल में क्रमशः विकसित प्रशासनिक व्यवस्था के दर्शन होते है। यह सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद एवं इनसे सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का रचना काल है। इस काल में राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली की प्रमुखता थी एवं पांचाल सर्वाधिक सम्पन्न राज्य था।

इस काल में भी सभा एवं समिति प्रमुख संस्थाएं थी जो राजा की निरंकुशता पर नियन्त्रण स्थापित करती थी। अथर्ववेद में इन दोनों संस्थाओं को ब्रह्मा की दुहिता कहा गया है जो परस्पर सहमत होकर राजा को परामर्श देती थी।[3] समिति जन साधारण का सदन था और सभा विशिष्ट लोगों की संस्था थी जिसमें विद्वान् लोग सम्मिलित होते थे।[4] समिति की अध्यक्षता करने वाले को ईशान कहा जाता था।

राज्य प्रशासन के उच्चाधिकारियों को रत्नी कहा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में 12 प्रकार के रत्नियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें प्रमुख हैं – सेनानी, पुरोहित, युवराज, महिषी, सूत, ग्रामणी, क्षता (द्वारपाल) संग्रहीता, भागदुध (कर संग्रहण अधिकारी), गोविकीर्ता (वन विभाग) आदि।

इस काल में राजा ही सर्वोच्च न्यायाधिकारी होता था। विश्व विश्रुत इतिहास ग्रन्थों रामायण एवं महाभारत से भी तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था की सटीक जानकारी मिलती है। प्रशासन का सर्वोच्च प्रधान राजा होता था, राजा को परामर्श देने के लिए मन्त्री एवं सभासद होते थे जिनकी सहायता से राजा राजकार्य का संचालन करता था। राजा का प्रमुख उद्देश्य राजधर्म का पालन करना एवं प्रजारंजन था। रामायण के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रशासनिक कार्य के सफल संचालन में मंत्रणा का विशिष्ट स्थान था। सभा या मंत्रिपरिषद् सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था थी जिसमें अमात्य एवं चारों वर्णों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। रामायण में राम, रावण आदि के द्वारा सभासदों के साथ मन्त्रणा के अनेकशः उदाहरण मिलते हैं, यथा – राम के साथ युद्ध के समय रावण का अपनी सभा बुलाने का वर्णन उल्लेखनीय है –

ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात्।

यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम्।।[5]

महाभारत काल में राज्य को सप्तांगी कहा गया है और सरकार का स्वरूप प्रमुखतः राजतन्त्रात्मक था। शासन प्रणाली चाहे जो भी हो किन्तु सभी का प्रमुख लक्ष्य प्रजा हित ही था। महाभारत के शान्ति पर्व में राजा के न्यायप्रिय एवं निष्ठावान होने की बात पर बल दिया गया है। राजा पर नियन्त्रण के लिए अमात्यों, मन्त्रियों, पुरोहित आदि का प्रावधान किया गया है। राजा को राज्याभिषेक के समय लोकहित की शपथ लेनी होती थी। जो राजा प्रजारंजन में असफल रहता था उसका परिणाम भी उसी अनुरूप रहता था। महाभारत युग के राजाओं, वेणु, नहुष, सुदास आदि को इसी आधार पर मार दिया गया था।

महाभारत में राजकार्य के सुसंचालन के लिए 18 विभागों का वर्णन मिलता है।[6] कर प्रणाली, दूत व्यवस्था[7], सैन्य प्रशासन[8] आदि के बारे में भी महाभारत में सांगोपांग वर्णन मिलता है।

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि स्मृति ग्रन्थों का भारतीय साहित्य में प्रमुख स्थान है। इन रचनाओं से हमें केवल धार्मिक अनुष्ठान की ही जानकारी नहीं मिलती है अपितु ये तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक प्रणाली, प्रशासनिक तन्त्र आदि की जानकारी के स्रोत हैं। इनमें राजधर्म एवं सुव्यवस्थित शासन संचालन के लिए आवश्यक नियमों एवं संस्थाओं का व्यापक विवेचन है।

मनुस्मृति के अनुसार राज्य का उद्देश्य समाज में सुशासन की स्थापना करना है तथा राजा इन्द्र, वरूण आदि आठ देवों के गुणों से युक्त है –

''इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरूणस्य च।

चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निहत्य शाश्वतीः।।[9]

राज्य एक सावयव है जिसके 7 अंग है – स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, कोष, दुर्ग, दण्ड और मित्र।[10] इनमें राजा का स्थान सर्वोपरि है।

मनु ने आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि राज्य के सुचारू संचालन के लिए राज्य को दो, तीन, चार और 100 गांवों की इकाइयों के रूप में विभाजन करना चाहिए। नगरों के लिए भी न्याय, रक्षा, गुप्तचर व्यवस्था आदि का समुचित प्रबन्ध किया है। मनु ने विधायिका के बारे में भी विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार विधायिका या परिषद् में 10 सदस्य होने चाहिए एवं चयन का आधार बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए। मनुस्मृति में न्याय व्यवस्था का भी सुसंगत उल्लेख किया है। कहा है कि राजा स्वयं विवादों का निर्णय न करें अपितु विद्वानों के द्वारा ही निर्णय करवाना चाहिए। मनुष्य की आसुरी शक्ति पर नियन्त्रण के लिए अपराधों की प्रकृति के अनुसार दण्ड का प्रावधान किया गया है।

कर संग्रहण के लिए राजा को प्रजा का शोषण नहीं करना चाहिए और कर का उद्देश्य प्रजारंजन ही होना चाहिए। परराष्ट्र सम्बन्धों के लिए मण्डल सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य नीति भी मनु की महत्त्वपूर्ण देन है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राजा, राजधर्म, मन्त्रिपरिषद्, दूत, अधिकारीवर्ग आदि का सुसंगत विवेचन किया है। याज्ञवल्क्य ने भी राज्य के सप्तांग सिद्धान्त पर बल दिया है और एक सफल शासन के लिए एकान्त मन्त्रणा को उपयुक्त माना है –

मन्त्रामूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रां सुरक्षितम्।

कुर्याद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणाम फलोदयात्।।[11]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र का व्यावहारिक राज व्यवस्था के अध्ययन की दृष्टि से प्रमुख स्थान है। कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति में सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का समर्थन किया है एवं राज्य के सप्तांग सिद्धान्त को मान्यता दी है एवं राजा को प्रशासन में प्रमुखतम स्थान दिया है परन्तु प्रशासनिक कुशलता के लिए 18 अन्य अधिकारियों का उल्लेख किया है जिसे अष्टादश तीर्थ की संज्ञा दी गई है। ये हैं – मन्त्री, पुरोहित, सेनापति[12], दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्ता (सेना), युवराज, समाहर्ता[13], सन्निधाता[14], प्रदेष्टा[15], नायक (सेना), पौर व्यावहारिक, कर्मातिक, मन्त्रिपरिषद् अध्यक्ष, दंडपाल, दुर्गपाल, अंतपाल एवं आटविक। इस प्रकार कौटिल्य ने एक बहुत ही सुसंगत प्रशासनिक व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की है। पूर्वोक्त के अतिरिक्त अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भी यत्र–तत्र लोकप्रशासन से सम्बन्धित उल्लेखनीय वर्णन किया गया है। जिनमें कुछ का नामोल्लेख किया जा सकता है यदि वर्णन किया जाए तो सहस्राधिक ग्रन्थों की रचना हो सकती है। इनमें कतिपय ग्रन्थ अष्टादश पुराण, रघुवंश, शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम् मुद्राराक्षस, नैषधीयचरितम, राजतरंगिणी, दशकुमारचरितम्, हर्षचरितम्, शिवराजविजयम् आदि हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य सभी विधाओं में अग्रणी है। मानवीय जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसका इनमें उल्लेख न हो। आधुनिक काल की जड़ें संस्कृत साहित्य में ही समाहित है। अतः वर्तमान लोकप्रशासन का मूल आधार भी संस्कृत साहित्य में ही है। वर्तमान काल की संस्थाएं एवं पदनाम जैसे विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, प्रधानमन्त्री, न्यायाधीश, सेनाध्यक्ष, नौकरशाही, जिलाधिकारी आदि प्राचीन संस्कृत साहित्य में भिन्न–भिन्न या समान नामों के रूप में वर्णित हैं। वर्तमान प्रशासन प्राचीन कालीन प्रशासन का ही विकसित रूप है जो क्रमशः मानवीय आवश्यकतानुसार वर्तमान रूप में परिणत हुआ है।

REFERENCES

1. डॉ. हरिश्चन्द्र शर्मा : प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ. 199
2. ऋग्वेद : 7/27/3
3. अथर्ववेद : 3/4/2
4. डॉ. हरिश्चन्द्र शर्मा : प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ. 368
5. वाल्मीकीय रामायण : युद्धकाण्ड 11/24
6. महाभारत : 4/5/38
7. महाभारत : उद्योग पर्व 37/27
8. महाभारत : सभापर्व 5/63
9. मनुस्मृति : 7/4
10. मनुस्मृति : 9/294
11. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/344
12. अर्थशास्त्र – 2/33
13. अर्थशास्त्र – 2/2
14. अर्थशास्त्र – 2/5
15. अर्थशास्त्र – 4/9